

अद्वाणं जो महंतं तु,
 सपाहेजो पवज्जइ ।
 गच्छंतो सो सुही होइ,
 छुहातएहाविवज्जिओ ॥ (५)
 एवं धम्मं पि काऊणं,
 जो गच्छइ परं भवं ।
 गच्छंतो सो सुही होइ,
 अप्पकम्मे अवेयणे ॥ (६)

-उत्त० १९-२१-२२

वियाणिया दुक्खविवद्दणं धणं,
 ममत्तवंधं च महाभयावहं ।
 सुहावहं धम्मधुरं अणुत्तरं,
 धारेज्ज णिव्वाणगुणावहं महं ॥ (६)

-उत्त० १६-६

तदा मातृपितृभ्यां ताम्,

ममं दिव्या महापदं ।

विममं मममोऽयमो,

अकमे भगवन्मि सोमः ॥ (१०)

एवं धम्मं विउक्कम्म,

अहम्मं पट्ठिवज्जिजया ।

बाले मच्चुमुहं पत्ते,

अकमे भग्गे व सोमः ॥ (११)

-उत्त० ५-१४-१

तदा य तिरिण वागिया, मूलं वेत्तुण गिग्गया

एगोऽत्थ लहए लाहं, एगो मूलंण आगथो (१२)

एगो मूलं पि हारित्ता, आगथो तत्थ वागिथो

ववहारे उवमा एसा, एवं धम्मे वियाणह । (१३)

-उत्त० ८-१४-१५

लब्धंति विमला भोग,

लब्धंति सुसमीपमा ।

लब्धंति पुनर्मितं न,

एषो धर्मो न लब्धः ॥ (१६)

एष धर्मो भूय मिच्छे,

सामग्यं त्रिगदेमिग्य ।

सिद्धा मिज्झन्ति चाणेर्या,

मिज्झस्मन्ति तदाऽवरं ॥ (१७)

-उत्त० १६-१०

अन्ताणि धीरा सेवन्ति,

तेण अन्तरा इह ।

इह माणुस्सण् ठाण्ण,

धम्ममाराहिउं नरा ॥ (१८)

-सूय. १५-१०

7 100 10.54 911 12,

၇၆ အုပ်စုတို့၏အား

ਅਭਿਆਸ 3. ਗੁਰੂ,

1967 年 10 月 11 日

... 1921

भ्रमं कृतं नमः उ गच्छिष्ये दोषां,

श्वेतस्य दंतस्य त्रिनिर्दिष्टस्य ।

सामाय द्वासे य विवज्जयस्स,

गुणे य भासाय गिमेवगस्य ॥ (२०)

-सूच. (२) ६-

अङ्गिका

मन्त्रे जीवा नि हृच्छन्ति,
 जीविषं न मर्मिज्जुषं ।
 नमहा पाणिपदं धामं,
 निगमंथा वज्रयन्ति मां ॥ (१)
 -सूक्त १-११

अभयो पत्थिवो ! तुज्झं,
 अभयदाया भवाहि य ।
 अणिच्चे जीवलोगम्मि,
 किं हिंसाए पसज्जसि ? ॥ (२)
 उत्तरा ० १८-११

सो चेद्व अम्मापियसं,

एवमेयं जहा कुटं ।

इह लोके गिप्पिवामस्स,

णत्थि किंचिवि दुक्करं ।

—३—

अणिसिअो इहं लोए,

परलोए अणिसिअो

घासीचंदणक्खो अ,

असणे अणसणे . ६

(१०)

संयमी पुरुष पट्जोवनिकाय का आरंभ न करते हुए, मृषावाद एवं अदत्तादान का सेवन न करते हुए, परिग्रह, नारी, मान और माया का त्याग करते हुए विचरण करते हैं ।

(११)

हाथ पैर आदि शरीर के अवयवों को, मन को पाँचों इन्द्रियों को, पाप-परिणाम को और 'भाषा' संबंधी दोषों को गोपन करना चाहिए; अर्थात् इन सब की दुष्प्रवृत्ति से वचना चाहिए ।

(१२)

जैसे कछुवा अपने अंगों को अपने शरीर में संकुचित कर लेता है, उसी प्रकार मेधावी पुरुष धर्मध्यान की भावना से पापों को संकुचित कर ले ।

ओसाणमिच्छे मणुए समार्हि,

अणासिए शंतकरिंति शच्छा ।

ओमासमाणे दवियस्स वित्तं,

ए शिक्कसे वहिया आसुपन्नो ॥ २१

— सूय. १-१४-

सदाणि सौच्छा अदु भेरवाणि,

अणामवे तेषु परिष्पणज्जा ।

निदं च भिक्खु न पमाय कुज्जा,

कदकहं वा वित्तिगिच्छतिने ॥ २२

— सूय. १-१४-

विउद्धितेणं समयाणुसिद्धे,

उहंण त्ठुद्धेण उ चोइओ य ।

अच्चुद्धियाए घडदासिए वा,

अगारिणं वा समयाणुसिद्धे ॥ २४

-सूय. १-१४-८

ए तेसु कुज्जे ए य पव्वहेज्जा,

ए यावि किंची फरुसं वएज्जा ।

तहा करिस्संति पडिसुणेज्जा,

सेयं खु मेयं ए पमाय कुज्जा ॥ २५

—सूय १-१४-९

(२४)

शास्त्र से विरुद्ध कार्य करने वाला गृहस्थ या अन्य तीर्थिक या उम्र में बड़ा अथवा छोटा, यहां तक कि घटदासी भी यदि साधु को शुभ आचरण की शिक्षा दे तो भी साधु को क्रोध नहीं करना चाहिए ।

(२५)

पूर्वोक्त प्रकार से शिक्षा दिया हुआ साधु शिक्षा देने वाले पर क्रोध न करे, उसे व्यथा न पहुँचावे, कटु वचन न कहे । 'अब मैं ऐसा ही करूँगा' इस प्रकार स्वीकार करता हुआ साधु प्रमाद न करें ।

मे सुदुर्गुप्तं उवहाणवं म,
घर्मं च जे विंदति तत्थ तत्थ ।

आदेज्जयक्कं कुमले विक्कं,
म अरिद्वद् भामिउं तं समाहिं ॥ २१

—सूय १-१४-

जहा दूस्समम पुप्फेसु,
भमरां आवियइ रस ।

ण य पुप्फं किलामेइ,
सो अ पीणेइ अप्पयं ॥ (

एमेए समणा मुत्ता,
जे लोए संति साहुणो ।

विहंगमा व पुप्फेसु,
दाणभत्तेसणे रया ॥ (२

—दस. १-

वत्थगंधमलंकारं,

इत्थीओ सयगाणि य ।

अच्छंदा जे न भुंजति,

न से चाइ त्ति वुच्चइ ॥ (१)
—दस.

जे य कंते पिए भोए,

लद्धे वि पिड्डिकुव्वइ ।

साहीणे चयई भोए,

से हु चाइ त्ति वुच्चइ ॥ (२)
—दस.

सुहसायगस्स समणस्स,

सायाउलगस्स णिगामसाइस्स ।

उच्छोलणापहोयस्स,

दुल्लहा सुगई तारिसगस्स ॥ (३)
—दस.

(२६)

जो विवश होकर—अनिच्छा से वस्त्र, गंध, नंकार स्त्री और शय्या आदि का उपभोग नहीं करता, वह त्यागी नहीं कहलाता ।

(३०)

जो कमनीय और प्रिय भोगों को प्राप्त होने पर भी स्वेच्छापूर्वक त्याग देता है, वही सच्चा त्यागी कहलाता है ।

(३१)

सुख का आस्वादन करने वाले, साता के लिए आकुल रहने वाले, अत्यधिक निद्रा लेने वाले, बार-बार अंगों को पखारने वाले, ऐसे श्रमण को सद्गति प्राप्त होना दुर्लभ है ।

(३१)

जो तपश्चरण एवं मद्गुणों का प्रधानतः
वाला है, उत्तम वृद्धि वाला है, क्षमा और संयम में
निरत है और परीपद्मों पर विजयी होता है, उस
साधु को मुक्ति मुन्दभ होती है ।

(३२)

जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रिय है
वे भले ही विलम्ब करके—बृद्धावस्था में भी दीक्षित
हुए हों, गोघ्न देवभक्तों—स्वर्ग को प्राप्त होते हैं ।

(३४)

भिक्षु साज-शृंगार-भावना के निमित्त से
चिकने कर्मों का बन्ध करता है; जिससे वह पार
और दुस्तर संसार-सागर में जा पड़ता है ।

(३५)

श्रमण बहुत निद्रा न ले, ठहका मार-मार कर न हसे, परस्पर विवाधा न करे; बल्कि सदैव स्वाध्याय में निरत रहे ।

(३६)

साधु के योग्य सदगुणों के कारण ही कोई साधु होता है और अवगुणों के कारण असाधु कहलाता है; अतः साधु के योग्य गुणों को ग्रहण करो और साधु के अवगुणों का त्याग करो । जो आत्मा के द्वारा आत्मा के स्वरूप को जानकर राग और द्वेष को त्याग कर समभाव धारण करता है वही पूज्य है ।

अद्विभागी पण्डित,

अद्वं लुदं अणिग्गहे ।

अमविभागी अनियत्तं,

पावमपणं ति वृत्तवई ॥ (३७)

—उत्तः १७-१

पुड्डो य दंसमसएहिं,

समरं व महामुणी ।

णागो सगामसीसे वा,

अभिहणे परं ॥ (३८)

—उत्त० २-१

(३४)

जो अत्यन्त मायावी, भूगुरु (वपुषादी), अभिमानी, लोभी, इन्द्रियों का निग्रह न करने वाला, गुरु, स्नान या शैश आदि को उचित भजन आदि न देने वाला एवं गुरु आदि के प्रति प्रीतिमान नहीं होता, वह पाप-श्रमण कहा जाता है ।

(३५)

जैसे शूरवीर हस्ती संग्राम के अग्रभाग में तीरों से वीधा जाता हुआ भी बिना घबराये शत्रु पर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार आस, मच्छरों आदि से रपृष्ट होकर मुनि भी क्रोधादि भावनाओं पर विजय प्राप्त करे ।



(८)

जैसे अन्धकार का विध्वंस करने वाला उद्दीयमान सूर्य तेज से जाज्वल्यमान होता है, इसी प्रकार बहुश्रुत भी अज्ञानान्धकार का विनाशक, संयम से ऊँचा उठता हुआ एवं तपन्तेज से देदीप्यमान होता है ।

(९)

जैसे नक्षत्रों का स्वामी चन्द्रमा नक्षत्रों, ग्रहों एवं ताराओं से घिरा हुआ पूर्णिमासी को समस्त कलाओं से परिपूर्ण होता है; इसी प्रकार बहुश्रुत भी साधु समूह रूपी नक्षत्रों से परिवृत होता है ।

(१०)

जैसे सागर में समाने वाली, नीलवन्त पर्वत से निकलने वाली शीता नामक नदी नदियों में उत्तम है, उसी प्रकार बहुश्रुत भी अन्य साधुओं में उत्तम, समुद्र के समान मुक्तिगामी और नीलवन्त पर्वत के समान महान् कुल में प्रसूत होता है ।

तप

(१)

जैसे पलस्तर बाली दीवार पलस्तर गिरा कर
कृश कर दी जाती है, इसी तरह अनशन आदि
तपों द्वारा शरीर को कृश कर देना चाहिए और
अहिंसाधर्म का पालन करना चाहिए । सर्वज्ञ ने
यही धर्म कहा है ।

(२)

जैसे पक्षिणी अपने शरीर में लगी धूल को
शरीर झाड़ कर गिरा देती है, इसी तरह अनश-
नादि तप करने वाला तपस्वी अव्य अपने कर्मों का
नाश कर देता है ।

अप्या चेव दमेयव्वो,
 अप्या हु खलु दुद्दमो ।
 अप्या दंतो सुही होइ,
 अस्सि लोए परत्थ य ॥५॥

—उत्तः

जो सहस्सं सहस्साणं,
 संगामे दुज्जए जिणे ।
 एगं जिणिज्ज अप्पाणं,
 एम से परमो जओ ॥६॥

—उत्त० ६-३४

अप्पाणमेव जुज्झाहि,
 किं ते जुज्झेण वज्झओ ।
 अप्पणा चेव अप्पाणं,
 जइत्ता सुहमेहए ॥७॥

—उत्त० ७-५

(१५२)

चिन्तन के चित्र

कामभोग

सल्लं कामा विसं कामा,
कामा आसीविमोवमा ।

कामे पत्थेमाणा,
अकामा जंति दुग्गई ॥१॥
—उत्तरा० ६-५३

सव्वं विलवियं गीयं,
सव्वं णट्ठं विडम्बणा ।

सव्वे आभरणा भारा,
सव्वे कामा दुहावहा ॥२॥
—उत्तरा० १३-५५

कामभोग

(१)

काम मन्य के समान है, काम विष के समान है, काम विषधर नाग के समान है । काम का जीवन न करते हुए भी काम की इच्छा माय करने वाले भी दुर्गति का प्राप्त होते हैं ।

(२)

मंसार में समस्त गीत विलाप माय है, समस्त नृत्य विडम्बना है, समस्त आभरण भार रूप है और समस्त काम दुःखजनक है ।

(१३)

मनुष्यों के यह कामभोग कुशाग्र के जल के
मान अल्प है और वे भी छोटी-सी जिंदगी में !
फिर मनुष्य क्यों अपने योग धर्म को नहीं समझता !

(१४)

भोग-आमिष रूप दोष में आसक्त तथा हित-
कारी मोक्ष के विषय में विपरीत बुद्धि वाला,
अज्ञानी एवं धर्मक्रिया में शिथिल मूढ़ पुरुष उसी
प्रकार कर्मों से बद्ध होता है जैसे इलेप्स में भक्ती ।

(१५)

इन कामभोगों का त्याग करना बहुत कठिन
है । अधीर पुरुष सरलता से इनका त्याग नहीं कर
सकते । मगर जैसे वणिक् नौका के द्वारा दुस्तर
सागर को पार करते हैं उसी प्रकार निष्कलंक व्रत
वाले सन्त जन भव-सागर को पार करते हैं ।

मे ह नक्तु मणुस्साणं,

जे कंखाए य अंतए ।

अंतए सुरो वहती,

चक्कं अंतए लोड्ढती ॥ (१८)

—सूय. १४-०१

जमाहु अंहं सलिलं अपारगं,

जाणाहिं एं भवगदणं दुसोवखं ।

जंसी विसन्ना विसयंगणाहिं,

दूहओ वि लोयं अणुसंचरंति ॥ (१९)

—मग १०-१४

मज्जं विगयकसाया,

निदा विगहा य पंचमी भणिया ।

एए पंच पमाया,

जीवं पाडेंति संसारे ॥ (३)

कोहो अ माणो अ अणिग्गहीआ,

माया अ लोभो य पवड्ढमाणा ।

चत्तारि एए कसिणा कसाया,

सिंचंति मूलाइं पुणवभवस्स ॥ (१)

—दस. ८-४।

क 'माणं च मायं च,

लोहं च पाववड्ढणं ।

वमे चत्तारि दोसाइं,

इच्छंतो हियमप्पणो ॥ (२)

—दस. ८-३७

(१)

मद्य, विषय, कषाय, निद्रा और पांचयी
विख्या, यह पांच प्रमाद जीव को संसार में-जन्म-
मरण के चक्र में डालते हैं ।

कषाय

(१)

निबंदिन नहीं किया हुआ क्रोध और मान
तथा बढ़ती हुई माया और लोभ-यह सब चारों
कषाय पुनर्भव के मूल का मिचन करते हैं अर्थात्
जन्म-मरण की परम्परा को वृद्धि करते हैं ।

(२)

जो अपना हित चाहता है वह क्रोध, मान,
माया और पापों को बढ़ाने वाले लोभ को-इन
—को-को-को त्याग दे ।

कोहो पीडं पणःसेइ.

माणो विणयणासणो ।

माया भित्ताणि नासेइ,

लोहो सव्व विणासणो ॥ (३)

—दत्त० ८-३०

उवसमेण हणे कोहं,

माणं मदवया जिणे ।

मायमज्जवभावेणं,

लोहं संतोसओ जिणे ॥ (४)

—उत्त० ८-३०

अहे वयइ कोहेण,

माणेण अहमा गई ।

माया गइपडिग्घाओ,

लोहाओ दुहओ भयं ॥ (५)

—उत्त० ६-३०

कायसा वयसा मत्ते,
वित्ते गिद्धे य' इत्थिसु ।

दुहओ मलं संचिणइ,
सिसुनागो व्व मट्ठियं ॥ (६)
—उत्त० ५-१०

सण्हिं च न कुव्विजा,
लेवमायाय संजए ।

पक्खी पत्तं समायाय,
णिरवेक्खो परिव्वए ॥ (७)
—उत्त० ६-१६

कसिणं पि जो इमं लोकं,
पडिपुण्णं दलेज्ज एगस्स ।

तेणावि ते ण संतुस्से,
इह दुप्परए इमे आया ॥ (८)
—उत्त० ८-१६

(१४)

जो मनुष्य फलार्थों में युक्त है, वह चाहे नग्न एवं कृमि होकर विचरण करे अथवा एक मान के भूत में भोगन करे; तथापि धनन्त कान तक परमेश्वर-ब्रह्म-मरुत को प्राप्त होता है ।

(१५)

जो पुरुष नप या चोर, द्रव्य या वचन का चोर, देव का चोर या आचार-भाव का चोर होता है, वह मर कर किल्बिष (अश्रम श्रेणी का) देव होता है ।

(१६)

देवगति प्राप्त होने पर भी किल्बिष होता है !
 वहाँ भी उसे पता नहीं चलता कि क्या करने में भुल्लेक्ष कुफल की प्राप्ति हुई है ?

(१८)

वह वहां से च्युत होकर गूंगे वकरे की योनि प्राप्त करेगा । तत्पश्चात् नरक-तिर्यंच योनि में जन्म लेगा जहां बोधि अत्यन्त दुर्लभ है ।

(१९)

ज्ञातपुत्र भ० महावीर द्वारा कथित इस दोष को जान कर भेदावी पुरुष अणु मात्र भी माया-मृषावाद का परित्याग कर दे ।

(२०)

अपने अन्तरतर के अनुगम को हटा दो । जैसे कमल शारद जल में उत्पन्न होकर भी उसमें लिप्त नहीं होता उसी प्रकार समस्त आसक्ति से रहित होकर, हे गीतम ! क्षण भर के लिए भी प्रमाद न करने ।

जे कोहणे होइ जगद्वभासी,
विओसियं जे उ उदीरएज्जा ।

अंधेव से दंडपहं गहाय,
अविओसिए धासति पावकम्मी ॥२१॥
—सूय. १-१३-५

जे विग्गहीए अन्नायभासी,
न से समे होइ अभंरूपत्ते ।

उवायकारी य हिरीमणे य,
एगंतदिट्ठी य अमाइरूवे ॥ (२२)

—सूय: १-१३-६

जे यावि पुट्टा पलिउंचयंति,
आयाणमहुं खलु वंचयित्ता ।

असाहुणो ने इह साधुमाणी,
मायएण एसंति अणंतघातं ॥ (२३)

(-१)

जो पुनः सदा योग करना करता है, हमारे कर्मों का करने करता है और ज्ञान प्राप्त हुए कर्मों का प्रदर्शन करता है, वह योगाचार्य शगुन में पडा का है । पण्डितों से जाने बाँधे अंधे को तरह यहाँ से का भाजन बनता है ।

(२-)

जो कर्म करता है, अन्याय-भाषण करता है इनमता को प्राप्त नहीं होता । घनतुल्य मातृ का गुरु की आज्ञा का पालन करे, पापकर्म करने विजित हो और नरक के प्रति एकान्त निष्ठा रहे । यही पुरुषी अनायी है ।

(२३)

जो पृथ्वी पर गुरु का नाम छिपाते हैं, वे मोक्ष प वंचित होते हैं । वे वास्तव में असाधु हैं तथापि अपने को साधु मानते हैं । ऐसे मायावी अनन्त थार संसार में घात को प्राप्त होते हैं ।

कर्म

एगया देवलोएगु,

नरएगु वि एगया ।

एगया आसुरं कायं,

अहाकम्मेहिं गच्छई ॥ (१)

—उत्त० ३-३

तेणे जहा संधिमुहे गहीए,

सकम्मुणा किच्चइ पावकारी ।

एवं पया पेच्च इहं च लोए,

कडाण कम्माण ए मोक्ख अत्तिथि ॥ (२)

—उत्त० ७-३

कर्म

(१)

संसारी जीव शुभ कर्म उपार्जन करके देवलोक में जन्म लेता है, अशुभ कर्म उपार्जन करके नरक को व्यथाएँ भोगता है; अज्ञानपूर्वक कायक्लेश आदि सहन करके अमुरनिकाय में उत्पन्न होता है। इस प्रकार अपने कर्मों के अनुसार नाना योनियों में भटकता रहता है।

(२)

जैसे पाप करने वाला चोर खात के मुख पर पकड़ा जा कर अपने किये कर्मों द्वारा ही दुःख उठाता है, उसी प्रकार जीव परलोक और इसलोक में किए दुष्कर्मों द्वारा दुःख उठाते हैं; क्योंकि किये कर्मों को भोगे बिना छुटकारा नहीं मिलता।

(१६२)

चिन्तन के चित्र

कामेहि संथवेहि य 'गिद्धा,
कम्मसहा कालेण जंतवो ।

ताले जह धंधणच्चुए,
एवं आउक्खयंमि तुड्ढति ॥ (७)
—सूय. २-१-

अया सव्वं परिच्चज्ज,
गंतव्वमवरुस ते ।

अणिच्चे जीवलोगम्मि,
किं रज्जम्मि पसज्जसि ? ॥
—उत्त० १२-

जीघियं चैव रूवं च,
विज्जु-संयाय-चंचलं ।

अत्थ तं मुज्झसि रायं,
पेच्चत्थं णाववुज्झसि ॥
—उत्त० १८

(७)

विद्यमानों में और शरीर आदि में आध्यात्मिक
गुणों के प्रकाश होने पर अनेक कर्मों का फल भोगने
में काम्य भी होने पर अनेक प्रकार के सुखों का भोग
होने में अनेक प्रकार के सुखों का भोग मिल जाता है ।

(८)

इस अनित्य जीवलोके में जब सभी सुख त्याग
कर प्रवृत्त हो जाता है, तब इस राज्य—वैभव में
क्यों अनुरक्त हो रहा है ?

(९)

राजन् ! जिस पर तुम मुग्ध हो रहे हो, वह
जीवन और रूप विजयी की क्षणिक आभा के
समान है । तुम परलौकिक हित को नहीं समझते ।

(११)

उमनाथ से श्रमण, ब्रह्मचर्य से ब्राह्मण, ज्ञान
मुनि और तपस्वियों से तपस्व का पद प्राप्ता
जाता है ।

(१२)

दृष्ट शिष्य वैसे ही होते हैं जैसे गरियाल बैल ।
उन्हें धर्म-शकट में जोता जाय तो अपनी अधीरता
के कारण उसे सहनसहन कर देते हैं ।

मोक्ष

जहा महातलायस्स,
 सण्णिरुद्धे जलागमे ।
 उस्सिचणाए तवणाए,
 कमेणं सोसणा भवे ॥ (१)

एवं तु संजयस्सावि,
 पावकम्मणिरासवे ।
 भवकोडिसंचियं कम्मं,
 तवसा णिज्जरिज्जई ॥ (२)

सोच

(१-२)

जैसे किन्हीं विनाश तालाब में सूखे जल का आगमन नक जाय और पूर्वसंचित जल अरहुड प्रादि से सोचा जाय और सूखे की निरन्ता द्वारा सोझ लिया जाय तो धीरे-धीरे सम्पूर्ण जल सूख जाता है; इसी प्रकार जब कोई संयमयाम् पुरुष नवीन पाप-कर्मों का निरोध कर देता है और तपश्चरण से पूर्व संचित कर्मों की निजंरा करता है तो कीटि-फोटि भवों में संचित समस्त कर्मों का अन्त आ जाता है ।

विरत्यु तं जमोकामी,
 जो तं जीवियकारणा ।
 वंतं इच्छसि आवेडं,
 संजयं ते मरणं भवे ॥ (२)

अहं च भोगराषस्म,
 तं च सि अंधगवणिहणो ।
 मा कुले गंधणा होमो,
 संजयं निहुओ चर ॥ (३)

जइ तं काहिसि भावं,
 जा जा दिच्छसि नारियां ।
 वायाविद्धुव्व हडो,
 —निगण्णा भविस्ससि ॥ (४)

(२४०)

विष्णु के चित्र

[२]

अरिष्टनेमि का विवाह

कस्य अट्टा इमे पाणा,
एए सद्ये सुहेसिणो ।

वाडेहिं पंजरंहिं च,
सपिणरुद्धा य अञ्छहिं ॥ (१)

अह सारही तओ मणइ,
एए भदा उ पाणिणो ।

तुज्झं विवाहकजम्मि,
भे ॥ २ ॥ जणं ॥

जई हो गई । बड़े ठाट के साथ नमस्कार कर अद्वैत
जना होकर जब द्वारवार के लिए जा रही थी
। अरिष्टनेमि को रास्ते में एक गाछ में बंद बहुत-
सम देनाई दिए । पशुओं को भेज कर अरिष्ट-
नेमि ने अपने सारथी ने पूछा—)

(१)

सारथी से अरिष्टनेमि ने कहा—किसके लिए
यह सब मुख के अभिलाषी प्राणी बाढ़ों और पीजनों
में बंद किये गये हैं ?

(२)

सारथी ने कहा—यह भद्र प्राणी आपके विवाह
अवसर पर बहुत-से लोगों (वरातियों) को
बल्लाने के लिए हैं ।

मोडण तस्स वयणं,
 बहुपाणिविणामणं ।

चित्तेदं मे महापणो,
 साणुकोसे जिणहि उ ॥ (३)

जइ मज्झ कारणा एए,
 हम्मंति सुवहु जिया ।

ण मे एयं तु णिस्सेसं,
 परलोगे भविस्सइ ॥ (४)

सो कुंडलाण जुयलं,
 सुत्तगं च महायसो ।

आभरणाणि य सव्वाणि,
 सारहिस्स पणामए ॥

मणा मार्यामयो जीमो,

दृष्ट्वा पश्चिमावः ।

तं मरुतं तु निमित्तमाभि,

धम्ममिवस्वाह कथमं ॥ (=

कृष्णहा वदतो लोण,

जहिं मासंति जंतुणां ।

अद्वाणे कलं वदंतो,

तं ग मासति गोयमा ! (६)

कृष्णवयणपासंडी,

सर्वे उम्मग्गपट्टिया ।

सम्मग्गां तु जिणक्खायं,

एस मग्गे हि उत्तरे

(३)

जहाँ हित में प्रवृत्त करने की प्रेरणा नहीं है वहाँ जीभ से चाटना-पुनकारना-भी अच्छा नहीं। इसके विपरीत जहाँ हित में प्रवृत्त करने की प्रेरणा है, वहाँ डंटे से पीटना भी बुरा नहीं है।

(४)

उस शिष्य को भी वैरी ही समझना चाहिए जो प्रमाद रूपी मदिरा में उन्मत्त और समाचार (आचार-परम्परा) को विराधना करने वाले अपने गुरु को सावधान नहीं कर देता।

(५)

जो बुद्धिहीन साधु सुखशील-सुकुमार-होने के कारण विहार में आलस्य करता है, अर्थात् आलस्य के कारण श्रमण नहीं करता, वह संयम-योग क

(६)

जो कुल, ग्राम, नगर और राज्य को ठुकरा कर साधु बन कर फिर उनमें ममता धारण करता है; वह कोरा बेपधारी है। संयम-योग की दृष्टि से तोखला है।

(७)

जो आचार्य अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर जिन भगवान् के शासन को प्रकाशित करता है, वह तीर्थंकर के समान है। यदि जिनेन्द्र भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन करता है तो वह कापुरुष है, सत्पुरुष नहीं है।

(८)

स्वयं भ्रष्टाचारी आचार्य, भ्रष्टाचारियों की उपेक्षा करने वाला आचार्य और शास्त्र-विरुद्ध प्ररूपणा करने वाला आचार्य, यह तीनों आचार्य सन्मार्ग का नाश करने वाले हैं।

(६)

आगम के विरुद्ध प्ररूपणा करने वाले और
निर्लेख मार्ग को दूषित करने वाले आचार्यों का
को उपासना करता है, हे गौतम ! यह निश्चय
है अपने आपको जन्म-मरण के चक्र में कैसाता है ।

(१०)

अगर कोई व्यक्ति शुद्ध साधु-मार्ग की प्ररूपणा
करता है, हालांकि स्वयं उसका वह पूरी तरह पालन
हीं कर सकता, तो वह संविग्नपाक्षिक नामक
तीसरी (साधु और गृहस्थ से भिन्न) श्रेणी में
अपने आपको रखता है । उत्सृज्य प्ररूपणा करने पर
वह गृहस्थधर्म से भी चूकता है ।

इस गाथा में साधु और गृहस्थ से भिन्न तृतीय वर्ग
का उल्लेख किया गया है । यह तीसरा वर्ग संविग्नपाक्षिक
कहलाता है । यह एक मध्यवर्ती वर्ग है । गृहस्थ से ऊँचा
और साधु से नीचा । इस वर्ग के त्यागी जघन्य रास्त्रिक
कहलाते हैं । वे उपदेश देते हैं, मगर अपना शिष्य बना कर
दीक्षा नहीं दे सकते ।

(११)

वीरराग द्वारा इच्छित अनुष्ठान का यदि
फलन न दिना आ सकता हो या भी वीरराग न
कथनानुसार उभयतः निम्नतः नश्यत् हो फल
वाहित ।

(१२)

गीतन ! भक्तकाल में कई ऐसे आचार्य ही चुके
हैं, भविष्य में कई ऐसे आचार्य होंगे और वर्तमान
काल में कई ऐसे आचार्य हैं, जिनका नाम लेने से
भी पाप लगता है, प्रायश्चित्त लेना पड़ता है ।

(१३)

जिन नाथुओं ने परमार्थ का अध्ययन नहीं
किया है, अर्थात् आचर्य, संवर, वंश और निजरा
के मर्म को नहीं समझा है, उनमें दूर ही रहना
चाहिए । वे दुर्गति के मार्ग पर न जाने वाले हैं ।

गीयन्थम्म वयणेणं,

विमं हालाहलं पिवे ।

निव्विकप्पो य भव्विज्जा,

तक्खणे जं समुद्वे ॥

परमत्थयां विसं नो तं,

अमयेरमायणं खु तं ।

निव्विग्वं जं न तं सारे,

सत्थाऽवि असयस्समो ॥ (१४)

(गच्छा. ४४-४५)

अगीअत्थस्स वयणेणं,

अभियंपि न घुंटे ।

जेण नो तं भवे अमयं,

जं अगीअत्थदेसियं ॥ (१५)

(गच्छा. ४६)

(१४)

अगीतार्थ मुनि के कहने में हानाहान विष भी नष्ट होकर पी जाना या ग्या जाना चाहिए, भवे । ऐसा करने में नरकाल शरीर त्याग देना पड़े । स्वयं में वह विष, विष नहीं, अमृत-रसायन है, जसमें मृत्यु नहीं होती । कदाचित् मृत्यु हो जाय । उनके प्रभाव में अमरत्व की प्राप्ति होती है ।

(१५)

अगीतार्थ के कहने में अमृत भी नष्टकना उचित ही है । क्योंकि अगीतार्थ में जो कहा है, वह क्षुतः अमृत हो नहीं सकता ।

(१६)

जलती हुई भयानक आग में, निष्शंक प्रवेश करके अपने आपको भस्म कर डालना भला, मगर जाल पुरुष की संगति करना भला नहीं । तात्पर्य जाल की संगति भयानक आग से भी अधिक निकर है ।

(७३०) निम्न के निम्न
पञ्चालियं सुमवर्तं दृष्टं,

निर्ममका तव्य पविसिउं ।

अन्ताणं निद्रहिउजाहि,
नो कुमीलस्स अदिन्नए ॥ (१६)
(गच्छा ४६)

गुरुणा कज्जमकज्जे,
सुरकककमदुडुनिडुरगिराए ।

भगिणए तहत्ति सीसा,
भगंति ते गोयसा ! गच्छं ॥ (१७)
(गच्छा. ५६)

तं पि न सुव-सत्थं,
न य वणत्थं न चेव दप्पत्थं ।

संजमभरवहणत्थं,
अक्खोवंगं व वहणत्थं ॥ (१८)
(गच्छा. ५८)



